'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'

की

जैनदर्शनसम्मत व्याख्या

—राजकुमारी सिंघवी
[शोध-छात्रा, संस्कृत विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय, (जोधपुर)]

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' इस सूत्र के अनुसार योग शब्द के अर्थ की संगति समाधि अर्थ में प्रयुक्त युज् धातु से घञ् प्रत्यय होकर सम्भव है।

योग शब्द के विभिन्न अर्थ—'सम्बन्ध'[1] करना या जुड़ना,[2] जीव का वीर्य[3] अथवा शक्ति विशेष, आत्म प्रदेशों का परिस्पन्द या संकोच विस्तार, समाधि,[4] वर्षा काल, स्थिति आदि नाना अर्थों में से प्रस्तुत प्रसंग में समाधि अर्थ ही उपयुक्त है। योगभाष्यकार व्यास, तत्ववैशारदी टीकाकार वाचस्पतिमिश्र एवं योगवार्तिककार विज्ञानभिक्षु तथा राजमार्तण्डवृत्तिकार भोजदेव का भी यही मत है।[5] इसीलिए पतञ्जलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा है।[6] सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दो प्रकार के योग की व्याख्या पतञ्जलि ने की है। प्रस्तुत सूत्रगत चित्तवृत्तिनिरोध अर्थ करने पर सम्प्रज्ञात समाधि को योग लक्षण में समाहित नहीं किया जा सकता। अतः यशोविजय जी ने प्रस्तुत सूत्र में "क्लिष्ट चित्तवृत्ति निरोधो योगः" ऐसे परिष्कार का संकेत किया है। जिससे योग के लक्षण में सम्प्रज्ञात योग का भी समावेश हो सके। सम्प्रज्ञात योग में अक्लिष्ट चित्तवृत्तियाँ अथवा योगसाधक चित्तवृत्तियाँ संस्काररूपेण विद्यमान रहती हैं। भाष्यकार व्यास, वाचस्पतिमिश्र, विज्ञानभिक्षु, भोजदेव आदि सभी ने योग के अन्तर्गत सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दोनों समाधियों का अन्तर्भाव किया है।

भाष्यकार व्यास के अनुसार असम्प्रज्ञात समाधि में सर्व चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है तथापि सम्प्रज्ञात समाधि में विवेकख्यातिरूप,सात्विक वृत्ति विद्यमान रहती है अतः भाष्यकार ने 'सर्व' शब्द का ग्रहण सूत्र में न होने से सम्प्रज्ञात भी योग है ऐसा निर्देश किया है।[7] एकाग्र एवं निरुद्ध भूमिगत वृत्ति

www.jainelibrary.org

निरोध ही योग है। चित्त की प्रत्येक भूमिगत वृत्तिनिरोध नहीं। निरुद्ध भूमिगत वृत्तिनिरोध वृत्तियों का पूर्ण निरोध होने से एवं असम्प्रज्ञात समाधि का साक्षात साधन होने से योग ही है। तथापि एकाग्र भूमिगत वृत्तिनिरोध की कारणता को स्पष्ट करते हुए व्यास लिखते हैं—यह चित्त में सद्भूत पदार्थ (अर्थात् ध्येय) को प्रद्योतित करने से, क्लेशों को क्षीण करने से, कर्मों के बन्धन अर्थात् कर्माशय को शिथिल करने से तथा असम्प्रज्ञात समाधि में भी सहायक बनने से सम्प्रज्ञात योग कहा जा सकता है।[8]

वाचस्पतिमिश्र योग के विरोधी तत्त्वों—क्लेश, कर्म एवं विपाकाशय को उत्पन्न करने वाली चित्तवृत्तियों के निरोध को योग मानते हैं।[9] ऐसा मानने से सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात दोनों समाधि योग शब्द में परिगणित होते हैं।

भोजदेव ने अपनी वृत्ति राजमार्तण्ड में चित्त की एकाग्र अवस्था में बहिर्वृत्तिनिरोध होने से योग माना है तथा निरुद्धभूमि में सर्ववृत्तियों और संस्कारों का लय होने से योग की सम्भावना व्यक्त की है।[10] दोनों ही भूमियों में चित्त का एकाग्रता रूप परिणाम रहता है।

विज्ञानभिक्षु योग लक्षण के इस सूत्र के अग्रिम सूत्र को सम्मिलित कर अर्थ करते हैं। उनके अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध जो कि द्रष्टा को वास्तविक स्वरूप में अवस्थित कराने का हेतु हो वही योग कहा जा सकता है अन्य नहीं[11]। इस प्रकार सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दोनों समाधियों का अन्तर्भाव सूत्रगत योग शब्द में हो जाता है।

यशोविजय के अनुसार 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' इस सूत्र में सर्व शब्द का अध्याहार करने अथवा न करने दोनों पक्षों में सूत्रकार पतञ्जलि के सूत्र का आशय स्पष्ट नहीं होता और लक्षण अपूर्ण रहता है क्योंकि सर्व पद का अध्याहार न करने पर लक्षण सम्प्रज्ञात योग में तो व्याप्त हो जायेगा किन्तु इससे कतिपय चित्तवृत्तियों के निरोध की विक्षिप्त अवस्था में भी लक्षण की अतिव्याप्ति होने का दोष आ पड़ेगा जो सूत्रकार को कदापि इष्ट नहीं है। सर्व शब्द ग्रहण न करने भी अर्थतः प्राप्ति होने से उक्त अतिव्याप्ति निराकरणार्थ यदि सर्व पद का अध्याहार न किया जाय तो सम्प्रज्ञात में लक्षण की अव्याप्ति होगी क्योंकि सम्प्रज्ञात में सर्व चित्तवृत्ति निरोध नहीं होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि सर्व पद को ग्रहण न करने विषयक व्यासभाष्य तथा तत्व वैशारदी में निरूपित समाधान से यशोविजय सन्तुष्ट नहीं है और इसीलिए कतिपय योग सूत्रों के जैन वृत्तिकार यशोविजय ने "विलष्ट चित्तवृत्तिनिरोधो योगः" कहकर लक्षण का परिष्कार किया है। इस परिष्कार से भी सम्प्रज्ञात योग का ग्रहण सम्भव है। जैनदर्शन सम्मत व्याख्या प्रस्तुत करते हुए यशोविजय का कहना है—

"समितिगुप्ति साधारणं धर्म व्यापारत्वमेवयोगत्वम्"

अर्थात् पंच समिति ईर्या, भाषा, एषणा, भण्डोपकरण, आदान-निक्षेपण और त्रिगुप्ति (मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति) से संबलित धर्मक्रिया योग है। धर्मव्यापारत्व कहने से सम्प्रज्ञात योग का भी समावेश सम्भव है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह त्रिपुटी व्यापार में शक्य है। हरिभद्रसूरि के योग विंशिका से उद्धृत लक्षण में—

"मोक्खेण जोयणाओ जोगो सव्वो वि धम्मवावारो।
परिसुद्धो विन्नेओ ठाणाइगओ विसेसेण।।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त परिशुद्ध धर्म व्यापार जो मोक्ष में साधक हो उसे योग कहा है। जिस योग का फल कैवल्य अथवा मोक्ष हो वही असम्प्रज्ञात योग या निर्विकल्प समाधि है। वह सर्व व्यापार-निरोध की अवस्था है।

कुन्दकुन्दाचार्य ने निश्चय चारित्र के अन्तर्गत योग का महत्त्वपूर्ण स्थान माना है। नियमसार के परम भक्तव्यधिकार में व्यवहार एवं निश्चय नय दोनों की अपेक्षा से भक्ति तथा योग का वर्णन किया है। श्रमण के लिए योग का स्वरूप बताते हुए कुन्दकुन्दाचार्य ने योग भक्ति के अन्तर्गत आत्मा द्वारा रागादि के परित्याग तथा समस्त विकल्पों के अभाव को उपादेय बताया है। एक पारिभाषिक गाथा द्वारा कुन्दकुन्दाचार्य योग को निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं—"विपरीत अभिप्राय का त्याग कर जो जिनेन्द्र द्वारा कथित तत्त्वों में स्वयं को लगाता है वह निजभाव ही योग है।"[12] राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि ग्रन्थों में भी समाधि, सम्यक्, प्रणिधान, ध्यान, निरवद्य क्रिया विशेष का अनुष्ठान, साम्य चित्त निरोध तथा योग को एकार्थवाची कहा है।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" से सम्बन्धित उक्त जैन मन्तव्य योग के स्वरूप को और स्पष्ट कर देता है।

मेरे मत में योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः इस सूत्र से ही सर्वविध चित्तवृत्तिनिरोधः ऐसा अर्थ फलित होता है जो असम्प्रज्ञात योग का निर्देश करता है। पुरुष की स्वरूप प्रतिष्ठा जिस योग में होती हो वही योग अपेक्षित है। सम्प्रज्ञात योग तो यम-नियमादि की भाँति एक अङ्ग है, उसका सूत्र में उल्लेख आवश्यक नहीं है अतएव द्वितीय सूत्र की सार्थकता भी स्पष्ट होती है—

"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्"।

यशोविजय द्वारा दिये गये लक्षणों में एक निषेधपरक है—"क्लिष्टचित्तवृत्तिनिरोधो योगः" तथा दूसरा लक्षण विधिपरक है—"समिति गुप्ति साधारण धर्मव्यापारत्वमेव योगत्वम्" जिसकी पुष्टि में हरिभद्रसूरि द्वारा दिये गये योग के लक्षण को प्रस्तुत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यशोविजय ने योगसूत्र पर लिखी गई टीकाओं को हृदयंगम कर अपनी जैनसम्मत व्याख्या प्रस्तुत की है।

वाचस्पतिमिश्र की तत्व वैशारदी[13] का आकलन यशोविजय ने "क्लिष्ट चित्तवृत्तिनिरोधो योगः" यह कहकर किया है तथा विज्ञानभिक्षु के योगवार्तिक[14] को ध्यान में रखते हुए—"समिति गुप्ति साधारण धर्मव्यापारत्वमेव योगत्वम्" कहा है और यह धर्म व्यापार द्रष्टा के स्वरूप के साक्षात्कार का हेतु होना चाहिए तभी वह योग कहलायेगा इस बात पर बल देने के लिए 'मोक्ष से संयोजित करने वाला विशुद्ध धर्म-व्यापार योग है' इस हरिभद्र के मन्तव्य को प्रस्तुत किया है।

जैन श्रावक और श्राविका के जीवन में योग की प्राप्ति क्लिष्ट चित्तवृत्तियों के निरोधपूर्वक ही हो सकती है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पंच क्लेश अविद्यामूलक होने से[15] गृहस्थ श्रावक को सर्वप्रथम अविद्यारूप मोहनीय कर्म पर विजय पाना आवश्यक है। अनित्य, अशुचि, दुःखरूप और अनात्मस्वरूप शरीर, इंन्द्रिय, पुत्र, मित्र, धन, वैभव आदि पदार्थों में ये नित्य हैं, पवित्र हैं, सुखरूप हैं और आत्मस्वरूप हैं, ऐसा अनात्मज्ञान अविद्या है। ये अविद्या आदि मोहनीय कर्म के औदयिक भाव विशेष हैं।[16] क्लेशों को उत्पन्न करने वाले कर्मों के अबाधा काल के क्षीण न होने से कर्मों के निषेक का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभाव क्लेशों का प्रसुप्तत्व है। विपरीत प्रकृति के कर्म के उदय से क्लेशों की प्रकृति का दब जाना क्लेशों का विच्छिन्नत्व है। कर्मों के उदय से क्लेशों का प्रकट हो जाना उदारत्व है।

जीव को अजीव समझना, अजीव को जीव समझना, धर्म को अधर्म समझना, अधर्म को धर्म समझना, साधु को असाधु व असाधु को साधु समझना, मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग व संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग इत्यादि दस प्रकार का मिथ्यात्व ही अविद्या है। दृश्य पदार्थों में दृक् चेतना का आरोप अस्मिता में अन्तर्भूत है।

बौद्धों के अनुसार दृश्य और दृक् का ऐक्य मानने पर दृष्टि-सृष्टिवाद का दोष उत्पन्न होगा। अतः दृश्य में दृक् के आरोप को अस्मिता क्लेश कहा है। अहंकार और ममकार के कारणरूप में राग और द्वेष क्लेशों का अन्तर्भाव किया है। जैन दर्शनानुसार राग और द्वेष कषाय के ही भेद हैं। अभिनिवेश का स्वरूप भय संज्ञात्मक है। अभिनिवेश क्लेश का तात्पर्य भय संज्ञा से है। अन्य आहार आदि संज्ञा विषयक अभिनिवेश भी विद्वानों में देखा जाता है। अतः यशोविजय ने भय संज्ञात्मक अभिनिवेश को संज्ञान्तरोप-लक्षण माना है। मोहाभिव्यक्त चैतन्य को संज्ञा कहते हैं।

सभी क्लेश मोहबीजात्मक हैं। अतः मोहक्षय से क्लेशक्षय होता है और क्लेशक्षय से कैवल्य सिद्धि होती है। इसी कारण यशोविजय ने क्लिष्टचित्तवृत्तिनिरोध को योग कहा है।

यशोविजय ने सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात भेद वाले योग को हरिभद्रसूरिविरचित योगबिन्दु में वर्णित योग के पाँच भेदों (अध्यात्मयोग, भावनायोग, ध्यानयोग, समतायोग, वृत्तिसंक्षययोग) में पञ्चम भेद वृत्तिक्षय में अन्तर्भूत माना है।

"वृत्तिक्षयोह्यात्मनः कर्मसयोग योग्यतापगमः"।

आत्मा की स्थूल-सूक्ष्म चेष्टाएँ वृत्तियाँ हैं, उनका मूल हेतु कर्मसंयोग की योग्यता है, और वह कर्मसंयोगयोग्यता कर्म प्रकृति के आत्यन्तिक बन्धव्यवच्छेदरूपी कारण से निवृत्त होती है। शुक्लध्यान के चार भेदों[17] में पृथक्त्ववितर्क सविचार शुक्लध्यान तथा एकत्ववितर्कअविचार शुक्लध्यान इन दो भेदों में योगसूत्र वर्णित सम्प्रज्ञात समाधि की तुलना यशोविजय ने की है, तथा योगबिन्दु को उल्लिखित किया है—

'समाधिरेषएवान्यैः सम्प्रज्ञातोऽभिधीयते।
सम्यक्प्रकर्षरूपेण, वृत्त्यर्थज्ञानस्तथा॥" (योगबिन्दु ४/६)

वृत्त्यर्थों के सम्यग्ज्ञान से ही यह सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है।

असम्प्रज्ञात समाधि की जैन दृष्टि से व्याख्या करते हुए यशोविजय ने केवलज्ञान प्राप्ति को असम्प्रज्ञात समाधि कहा है। गुणस्थान के क्रम में क्षपक श्रेणि गुणस्थान की समाप्ति होने पर केवलज्ञान प्राप्त होता है।

ग्राह्य विषय और ग्रहण अस्मिता आदि के आकार से आकारित होने वाले अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा मतिज्ञान के इस क्रम से भाव मनोवृत्तियों का अनुभव नहीं होता। भावमन से मतिज्ञान का अभाव हो जाता है, किन्तु द्रव्य मन से संज्ञा अथवा मतिज्ञान का सद्भाव रहता है, यह अवस्था योग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन में असम्प्रज्ञात समाधि है और जैन दर्शन में केवली की स्थिति है। इसीलिए (भावमनसासंज्ञाऽभावाद्द्रव्यमनसा च तत् सद्भावात्)[18] केवली नोसंज्ञी कहलाता है। इसका नाम असम्प्रज्ञात है। क्योंकि इस अवस्था में भाव मनोवृत्तियों का अवग्रह आदि क्रम से सम्यक् परिज्ञान का अभाव हो जाता है। केवली की असम्प्रज्ञात दशा ही योग दर्शन में असम्प्रज्ञात समाधि कही गई है। यशोविजय ने अपने इस कथन की पुष्टि हरिभद्रसूरिविरचित योगबिन्दु की निम्न कारिका से की है।

"असम्प्रज्ञात एषोऽपि समाधिर्गीयते परैः।
निरुद्धाशेषवृत्त्यादि तत्स्वरूपताऽनुवेधतः॥"[19]

पतञ्जलि के अनुसार चित्त की अवस्थाएँ पाँच प्रकार की हैं— क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। विज्ञानभिक्षु के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध जो कि द्रष्टा को वास्तविक स्वरूप में अवस्थित कराने का हेतु हो वही योग कहा जा सकता है, अन्य नहीं। अतः एकाग्र और निरुद्ध भूमि में होने वाले निरोध को ही योग कहा जा सकता है। एकाग्र भूमिगत वृत्ति निरोध चित्त में सद्भूत पदार्थ परमार्थ को प्रकाशित करता है, क्लेशक्षय करता है, कर्माशय को शिथिल करता है और असम्प्रज्ञात समाधि में सहायक बनता है अतः एकाग्र भूमिगत वृत्तिनिरोध सम्प्रज्ञात योग है तथा निरुद्ध भूमिगत वृत्तिनिरोध वृत्तियों का पूर्ण निरोध होने से असम्प्रज्ञात समाधि का साक्षात साधन है, अतः योग है। शेष चित्त की अवस्थाओं में होने वाला चित्तवृत्तिनिरोध क्लेश कर्माशय का जनक होने से चित्तवृत्तियों के क्षय का हेतु नहीं होने से तथा स्वरूपावस्थिति का हेतु नहीं होने से उन अवस्थाओं में योग के लक्षण की अति व्याप्ति की शंका नहीं करनी चाहिये।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं सन्दर्भ स्थल

१. दर्शन और चिन्तन, प्रथम खण्ड, पृ० २३०।
२. युजृपी योगे। हेमचन्द्र धातुमाला, गण ७।
३. वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितो जीव परिणाम विशेषः।
जैन परिभाषा—आत्माराम जी महाराज—जैन योग : सिद्धान्त और साधना, पंजाब, १९८३, पृ० ३२।
४. युज् समाधौ।
५. (अ) योगः समधिः—योगसूत्र, प्रथमपाद, १ सूत्र, व्या० भा पृ० १।
(ब) युज् समाधौ, इत्यस्माद्व्युत्पन्नः समाध्यर्थो न तु 'युजिर योगे' इत्यस्मात्संयोगार्थे इत्यर्थः।
योगसूत्र, प्रथमपाद, १ सूत्र त० वै०, पृ० ३।
(स) युज्समाधावित्यनुशासनतः प्रसिद्धोयोगः समाधिः। —यो० सूत्र, प्रथमपाद, प्रथमसूत्र, यो० वा० पृ० ७।
(द) "योगो युक्तिः समाधानम्" "युज समाधौ"। —यो० सू०, प्रथमपाद, भो० वृ० पृ०, ३।
६. 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'। —यो० सू० १/२।

www.jainelibrary.org

७. सर्वशब्दाग्रहणात्संप्रज्ञातोऽपि योग इत्याख्यायते । —व्या० भा० १/२, पृ० ६ ।

८. योग सूत्र १/१ सूत्र व्या० भा०, पृ० १ ।

९. क्लेशकर्मविपाकाशयपरिपन्थाचित्तवृत्तिनिरोधः । —त० वै०, पृ० १० ।

१०. अनयोर्द्वयोरेकाग्रनिरुद्धयोर्भूम्योर्यश्चित्तस्यैकाग्रतारूपः परिणामः स योग इत्युक्तं भवति ।
—यो० सू०/१/११ सूत्र, भो० पृ०, ११ ।

११. द्रष्टृस्वरूपावस्थितिहेतुश्चित्तवृत्तिनिरोधः । —यो० वा०, पृ० १३ ।

१२. "जो जुंजदि अप्पाणं णियभावे सो हवे जोगो" । —नियमसार, गाथा १३९, पृ० ११८ ।

१३. "क्लेशकर्मविपाकाशयपरिपन्थाचित्तवृत्तिनिरोधः" । —त० वै०, पृ० १० ।

१४. "द्रष्टृस्वरूपावस्थितिहेतुश्चित्तवृत्तिनिरोधः । —यो० वा०, पृ० १३ ।

१५. अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषामप्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् । —यो० सू० II/४ ।

१६. अत्राविद्यादयो मोहनीयकर्मण औदयिक भाव विशेषाः । —यशोविजय वृत्ति ।

१७. पृथक्त्वैकत्ववितर्क सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रियानिवृत्तीनि । —त० सू०, ९—४१ ।

ध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं—

(१) पृथक्त्ववितर्कसविचार,
(२) एकत्ववितर्कअविचार,
(३) सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाति,
(४) व्युपरतक्रियानिवृत्ति ।

१८. यशोविजयकृत योगसूत्रवृत्ति सूत्र १/१७, १८, पृ० ७ ।

१९. योगबिन्दु, कारिका ४२० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org